E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
IJAAS 2019; 1(1): 232-235
Received: 09-07-2019
Accepted: 14-08-2019

डॉ. अरविन्द कुमार यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर, एस. पी. एम कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अरविन्द कुमार यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर, एस. पी. एम कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

निराला के कथा साहित्य में जाति, स्त्री और अल्पसंख्यक

डॉ. अरविन्द कुमार यादव

प्रस्तावना

जैसा की आप सब जानते है कि निराला अपने समकालीन रचनाकारों में सर्वाधिक प्रयोगधर्मी थे इनकी इस प्रयोगधर्मिता का त्रास भी उनको जीवन पर्यंत झेलना पड़ा। यह और बात है कि इन्हीं प्रयोगों ने आने वाले प्रधान साहित्यिक आंदोलनों के लिए प्रस्थान बिंदु के रूप में काम किया, उनके लिए नई जमीन तैयार की। इन्हीं संदर्भों में निराला छायावाद के रुपायक के ही नहीं रूपांतरण के भी रचनाकार है।

निराला के रचनाकर्म के संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि निराला ने साहित्य की हर विधा पर कलम चलाई चाहे वह कविता, कहानी, उपन्यास हो। यहाँ तक की पत्रकारिता और अनुवाद में भी उनका योगदान महत्वपूर्ण है। इसके बावजूद हम देखते हैं कि उनका मूल्यांकन मूलतः कवि के रूप में ही होता रहा है। निराला संबंधी जितने भी महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक ग्रन्थ उपलब्ध है, उनके मूल्यांकन का विषय कविताएँ ही रही हैं। अन्य विधाओं के मूल्यांकन का प्रश्न यदि कहीं उठाया गया है तो भी, उसे सीमित रूप में या फिर काव्य के मूल्यांकन के पूरक के रूप में जोड़ दिया गया है।

सवाल – इस बात का है कि निराला का सम्पूर्ण चिंतन, उनकी स्थापनाएँ, मान्यताएँ, उनका प्रदेय केवल काव्य में ही है? क्या अन्य विधाएँ उसकी पूरक हैं? आप सब इस बात से सहमत होंगे कि ऐसा बिल्कुल नहीं है। निराला की जिवन दृष्टि, उनकी सामयिक सामाजिक चिंताएँ अनवरत रूप से गद्य साहित्य की सभी विधाओं में भी प्रवाहमान हैं। बल्कि कई मायनों में निराला का चिंतन कविताओं की तुलना में गद्य में ज्यादा प्रखर हैं। वे अपने गद्य में कविता के उन तमाम सीमाओं से भी मुक्त होते दिखाई देते हैं। यही नहीं अपने गद्य साहित्य में निराला ने उन मसलों को भी संजीदगी के साथ दर्ज किया जिससे साहित्य ने उपेक्षा बरती और इतिहास ने बेरूखी की– मसलन जाति का सवाल, राष्ट्रीय निर्मितयों के विखण्ड का प्रश्न, नारी अस्मिता के सवाल एवं साम्प्रदायिकता की समस्या, उपन्यास ''कुललीभाट'' के मार्फत हम अपने लेख में इन्हीं सवालों की ताकीद करेंगे और यह देखेंगे की हमारे आधुनिक सामाजिक संदर्भों से भी ये कैसे जुड़ता है'–

निराला जैसा कलाकार अपने सृजन के क्षणों में उन परिस्थितियों को नकार कर नहीं चल सकता जिसके प्रतिक्षण में वह साँस लेता है। यही कारण है कि निराला ने भारतीय समाज की उन समस्याओं पर भी विचार किया जिन पर साहित्य इतिहास और राजनीति सभी (दोनों में) ये लगभग बेरूखी सी स्थिति बनी हुई थी। मसलन जाति की समस्या, नारी अस्मिता, राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद। हालांकि इनमें कुछ पर अब विचार हो रहे हैं। निराला ने 1939 में ''कुल्लीभाट'' लिखते समय जिन समस्याओं (पर) की पहचान की थी वह आज भी उसी तरह विद्यमान है। कहीं अपने मूल रूप में तो कहीं अपने नये संस्करण में।

इसी सवाल पर जाने–माने इतिहासकार सुमित सरकार ने अपनी पुस्तक ''राइटिंग सोशल हिस्ट्री'' में विचार किया है। इसमें उन्होंने इतिहास लेखन में 'जाति' के साथ अपनायी गई बेरूखी और इसके दमन के मसले से जूझने की कोशिश की है। इन्होंने तर्क दिया कि मुख्यधारा का राष्ट्रवादी इतिहास लेखन कुछ इस तरह हुआ है कि उसमें जाति को एक मायने में गूँगा बना दिया गया है। उनका मानना है कि इस राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की प्राथमिकताओं का उसकी जाति संबंधी खामोशी से सीधा रिश्ता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो सुमित सरकार यह इशारा कर रहे हैं कि इतिहास और साहित्य लेखन की यह खामोशी महज एक इत्तफाक नहीं है बल्कि, उसके कलाम और उसके ढाँचे का एक लाजमी नतीजा है जिसने जाति की अवधारणा को नाजायज ठहरा दिया था। राष्ट्रवादी इतिहास लेखन में जाति का यह नाजायज दर्जा इसलिए है क्योंकि उसकी दुनियाँ में सिर्फ दो ही जायज खिलाड़ी थे– साम्राज्यवाद और राष्ट्रवाद। राजनीतिक अमल की दुनिया में आप या तो राष्ट्रवादी हो सकते थे या फिर साम्राज्यवाद के पिट्ठू। इन आधारों पर न तो फूले और अम्बेडकर जैसी शख्सियतों का किसी किस्म की हमदर्दी के साथ कोई अध्ययन मुमकिन हो पाता है– और न ही ऐसे आन्दोलनों का जिन्होंने निचली जातियों और औरतों के हक के लिए लड़ाइयाँ लड़ी।

बतौर सरकार– सवार्ल्टन स्टडीज के मसलों को लेकर अधिकतर हिस्से में मौजूद यह 'जानलेवा खामोशी' दरअसल एक बड़ी और आम बीमारी का लक्षण है। शायद उनका आशय इतिहास लेखन और राष्ट्रवाद के बुर्जुआ सवर्ण चरित्र से है। इस तरह जाति के सवाल की उपेक्षा न सिर्फ राष्ट्रवादी इतिहास लेखन में की गई थी, बल्कि मार्क्सवादी इतिहास लेखन भी इसका उतना ही गुनहगार था/है। कमोवेश यही स्थिति हिन्दी साहित्य में भी रही है।

यदि हम पिछले सालों में आए दलित उभार और साहित्य इतिहास लेखन पर पड़ने वाले उसके असर को समझने की कोशिश करें तो पायेंगे की इन सालों में हमारी निगाह की कई मामलों में बदल गई है। उसकी वजह पिछले सालों की वह परिघटना भी है जिसे हम छोटी पहचानों की बगावत कह सकते हैं। पिछले सालों की यह बगावत हिन्दुस्तान में और दुनिया के पैमाने पर दिखाई दे रही है। आदित्य निगम ने इसे राष्ट्रवादी विचार में आये संकट का नतीजा माना। यही कारण है कि दलित आवाज आज स्वतंत्र रूप व बुलन्द रूप में सामने आ पायी है। अब दलित महज वह ज्ञातव्य नहीं जिसका इतिहास 'हम' सेकुलर इतिहासकार ही लिख सकते हैं। अब वह एक नये इतिहास के कर्ता के रूप में हाजिर हुआ है, जिसका वह ज्ञाता भी है और ज्ञातव्य भी। वह अपना इतिहास खुद लिख रहा है। अपनी पीड़ा और संघर्ष खुद दर्ज कर रहा है।

जबकि निराला ने साहित्य और इतिहास से बेदखल नागरिकता के इस सबसे उपेक्षित मसलों को साहित्य के केन्द्र में रखा। इसे गैर जरूरी नहीं, बल्कि जरूरी माना। राष्ट्रीयता के निर्माण की शर्त के रूप में देखा। जिसकी शिनाख्त निराला ने 1939 में उपन्यास कुल्लीभाट में किया।

ध्यान दें तो ये वही लोग हैं जो निराला के नायक कुल्ली की पाठशाला से निकले हैं जो अपने दर्द का इतिहास खुद लिख रहे हैं। निराला ने उपन्यास में लिखा है– 'कुल्ली कहने लगे, ''अछूत पाठशाला खोलने के बाद से लोगों की रही सही सहानुभूति भी जाती रही। क्या कहूँ, आदमी आदमी के लिए जरा भी सहनशील नहीं। वह अपने लिए सब कुछ चाहता है, पर दूसरे को जरा भी स्वतंत्रता नहीं देना चाहता इसलिए हिन्दुस्तान की यह दशा है, मैं समझ गया हूँ। कुल्ली की पाठशाला मात्र सामान्य पाठशाला नहीं थी बल्कि एक सेकुलर जगह का खुलना था, जहाँ हकों की नई जबान है आजादी और बराबरी के ख्याल हैं।

निराला की बहुचर्चित कविता–

''जल्द जल्द पैर बढ़ाओ''
धोबी पासी चमार तेली
खोलेंगे अंधेरे का ताला''

जिसे कई मायनों में दलित विमर्श की पहली कविता भी कह सकते हैं– जिसे सही और सटीक संदर्भों में समझने के लिए उनके गद्य को समझना होगा।

जिसका उत्स कुल्ली की पाठशाला में मौजूद है। तब जबकि किसी भी रचनाकार को उसकी वैचारिक यात्रा में देखा जाना चाहिए और अपनी वैचारिक यात्रा में निराला आरोपों से बिल्कुल साफ और मुक्त दिखाई देते हैं।

निराला को जब इस नए सत्य का बोध (साक्षात्कार) होता है तो दलितों व मेहनकश आवाम की पहचान अंधेरे का ताला खोलने वाली शक्ति के रूप में करते हैं। वर्ग वैषम्य को वे गांधी का जहर कहते हैं और हरिजन उत्थान की जगह हजारों हाथों के उठते हुए समर की बात करते हैं। निराला संदेह करते हैं कि कांग्रेसी नेतृत्व में निर्मित स्वराज्य 'राजे' का नया चोला चढ़ा समाज होगा। उन्हें उम्मीद है कि जब मसुरिया बर्लई जैसे चरित्र उठ खड़ें होंगे तो जनता को किला बनाने वाले बड़े–बड़े से छली भाग जायेंगे।

कुल्लीभाट निराला ने लिखा– ''कुल्ली के अछूत पाठशाला गया इनके कुछ अभिभावक भी आये हुए थे दोनों में 'फूल लिए' इनकी ओर कभी किसी ने नहीं देखा– ये पुश्त दर पुश्त से सम्मान देकर नतमस्तक ही संसार से चले गए। संसार के सभ्यता के इतिहास में इनका स्थान नहीं। ये नहीं कह सकते हैं कि कश्यप, भारद्वाज, कपिल कणाद इनके पूर्वज थे। रामायण महाभारत इनकी कृतियाँ हैं। अर्थशास्त्र कामसूत्र इन्होंने लिखे हैं– फिर भी ये थे और हैं।

दरअसल निराला के इस कथन में हिन्दू धर्म और उसमें व्याप्त जाति आधारित शोषण की ऐतिहासिक पड़ताल मिलती है। निराला के चिंतन की विशेषता थी कि उनके लिए क्रांति शुरू होती थी इन निम्न जातियों से। राजनीतिक क्रांति को सफल होने के लिए वे इस सामाजिक क्रांति को अनिवार्य मानते थे। यह इनके स्वराज का मॉडल भी था। निराला के लिए गाँधी की तरह अछूतोद्धार कोई रचनात्मक कार्यक्रम नहीं था, जो राजनीतिक आन्दोलनों से छुट्टी मिलने पर फुर्सत के वक्त अपना लिया जाता। इनके लिए जाति प्रथा का विरोध व विनाश और समानता के लिए समाज का पुनर्गठन एक राजनीतिक कर्तव्य था, आध्यात्मिक मसला नहीं (गांधी की तरह)। उसे पूरा किए बिना राष्ट्रीयता का विकास असम्भव था। वर्णव्यवस्था के शिकार इन असहाय उपेक्षित इन बच्चों के प्रति निराला की करूणा, सहानुभूति अविस्मरणीय और क्रांतिकारी है।

इसके बावजूद निराला के मूल्यांकन के संदर्भ में इधर ऐसी स्थितियां सामने आयी है, जिन पर नजर डालना बेहद जरूरी है। अभी पिछले दिनों हिन्दी के बड़े कवि विष्णु खरे ने निराला पर उनकी कुछ रचनाओं के आधार पर साम्प्रदायिक होने का आरोप लगाया और दलित चिंतक कवल भारती ने उन्हें दलित विरोधी हिन्दूवादी व पुनरूत्थानवादी तक कह दिया। (17 नवम्बर 1996 इलाहाबाद 'जसम' में बोलते हुए)

इधर कुछ दलित चिंतकों द्वारा साहित्य में सहानुभूति और स्वानुभूति के सवाल भी जोर शोर से उठाएँ जा रहे हैं तो क्या इन आधारों पर निराला के जाति संबंधी इस साहित्य चिंतन को उतना प्रामाणिक नहीं माना जाना चाहिए? तब जबकि निराला ने इतिहास की इन दबी चीखों को तब आवाज दी जब दलित विमर्श जैसा चिंतन साहित्य में था ही नहीं। तो क्या दलित साहित्य में आये स्वानुभूति के सवाल को इतना आसानी से खारिज किया जा सकता है।

जहाँ तक मेरी समझ है, मैं यह मानता हूँ कि मनुष्य की संवेदना उसकी विराट करूणा को सहानुभूति और स्वानुभूति के द्विचर विरोध के (बाइनरी अपोजीसन) रूप में देखना मनुष्य की क्षमता को निःसंदेह एक खास दायरे में कैद कर देना है। जहाँ मनुष्य के बीच न कोई पीड़ा साझी होगी, न ही कोई दर्द साझा होगा। जबकि करूणा, प्रेम मनुष्य की मूल, संरचना में निहित होता है। इनबिल्ट होता है। वह सहज मानवीय गुण है। जो किसी भी चेतना सम्पन्न मनुष्य में हो सकता है। हमारी परम्परा में ऐसे ढेर सारे उदाहरण बुद्ध से लेकर नाथ साहित्य तक मौजूद हैं।

यह सही है कि दलित साहित्य ने जरूरी नए सवाल पैदा किये, भारतीय सामाजिक संरचना को देखने जाँचने परखने की नई दृष्टि भी दी। नए सौन्दर्यशास्त्र रचे। हाशिए की पीड़ा को मुख्यधारा की आवाज बनाया। यही कार्य निराला ने अपने गद्य साहित्य खास तौर पर 1934 में कुल्लीभाट और चतुरी चमार लिखकर किया। इस प्रकार निराला के जाति संबंधी चिंतन का दलित विमर्श से सीधा नाता है, जिसे साहित्यिक विकास परम्परा के क्रम में देखे जाने की जरूरत है, पूरक है।

इधर उत्तर औपनिवेशिक सांस्कृतिक विमर्श में निम्नवर्गीय विमर्श सबसे ताकतवर विमर्श के रूप में उभर कर सामने आया है। दलित विमर्श औपनिवेशिक दौर में निर्मित राष्ट्रवाद के वृत्तांत व

नैरेशन को तोड़ रहा है। उसे समस्याग्रस्त बना रहा है। इस तरह इन अस्मिता मूलक विमर्शों ने भारतीय राष्ट्रवाद को नये सिरे से चेक करना शुरू किया है। जैसे ही दलित, स्त्री, आदिवासी अस्मिता की दृष्टि से इस राष्ट्रवाद को पहचानने की कोशिश हुई भारतीय राष्ट्रवाद का सतही रूप सामने आने लगा। कुछ की दृष्टि में यह मर्दवादी पितृसत्तात्मक राष्ट्रवाद निकला तो निम्नवर्गीय (सवाल्टर्न) और दलित विमर्शकारों की नजर में उच्चवर्गीय। इस राष्ट्रवाद में उनका वास्तविक चेहरा नहीं दिखा। कहना न होगा कि इस राष्ट्रवाद को अस्मितवादी विमर्शों ने कड़ी चुनौती दी। साथ ही राष्ट्रवादी विमर्श में इन लोकतांत्रिक विमर्शों ने नए सिरे से हस्तक्षेप शुरू किया है।

ठीक इसी तरह औपनिवेशिक दौर में निर्मित हो रहे राष्ट्रवाद की वैचारिकी को निराला ने भी प्रश्नांकित किया। यही कारण था कि उपन्यास कुल्लीभाट में गाँधी और नेहरू का विरोध किया यह विरोध यदि सुना जाता कुछ सीमाओं के बावजूद निराला का संकल्पनाओं का राष्ट्रवाद बनता तो वह न ही पितृसत्तातमक मर्दवादी होता न ही उच्चवर्गीय। मुझे लगता है कि निराला के गद्य और कथा साहित्य में इन संभावनाओं पर भी नए सिरे से विचार होना चाहिए।

आजकल नारी अस्मिता का प्रश्न साहित्य के केन्द्र में है हाशिए की यह आवाज आजकल स्त्री आन्दोलन के उभार की शक्ल ले रहा है। 19वीं शताब्दी में भी अपनी सीमाओं के बावजूद स्त्रियों की शिक्षा तथा भविष्य में उनकी दशा सुधारने के लिए वातावरण तैयार करने की कोशिश की गई। निराला ने भी अपने साहित्य में स्त्री पराधीनता का मूल कारण अशिक्षा माना। राष्ट्र के उत्थान को स्त्री शिक्षा और उसके उत्थान से अनिवार्यतः जोड़कर देखते थे। निराला के शब्दों में– ''ज्ञान कभी पराधीन नहीं रह सकता। बल्कि एक ही शब्द में स्वाधीनता की परिभाषा की जाय, तो वह ज्ञान ही होगा। हमारा अभिप्राय यह है कि हम अपने राष्ट्र की महिलाओं के लिए चाहते हैं कि वे दूसरों को अपनी आँखों से देखे, अपने को दूसरों की आँखों से नहीं।'' (दूसरों द्वारा आरोपित सौन्दर्यबोध का नकार)।

यही कारण है कि निराला के लगभग सभी कथा संग्रह स्त्री वाचक हैं– लिली, सखी, सुकुल की बीबी तथा देवी, स्त्री वाचक है। उनकी कथाओं का आधार भी स्त्रियां ही हैं। नारी विषयक ढेर सारी समस्याओं पर निराला ने विचार किया। ज्योतिनिर्मयी द्वारा विधवा विवाह की समस्या, कमला द्वारा परित्क्ता नारी की समस्या, अनमेल विवाह की समस्या आदि मुख्य पक्ष हैं।

उपन्यास कुल्लीभाट में एक प्रमुख समस्या साम्प्रदायिकता की है जो हमारे आज के संदर्भो से भी सीधा जुड़ता है। इस साम्प्रदायिकता का उदय आधुनिक राजनीति से जुड़ा हुआ है। यह एक संकीर्ण चेतना थी जिसे उपनिवेशवाद ने उत्पन्न और अक्सर प्रोत्साहित भी किया। इस चिंतन के मार्ग में बोध बनी वे दो परस्पर रूढ़ धारणाएँ जिनका विकास बीसवीं सदी में हुआ। इनमें से एक तो वह धारणा थी जो हिन्दू और मुसलमानों को परस्पर विरोधी ईकाई के रूप में देखती थी जो मध्यकाल से ही राष्ट्रों के रूप में बनी रही थी। वहीं दूसरी धारा के अनुसार भारत में हिन्दू मुसलमान कभी पूर्ण मैत्री के एक स्वर्ण युग में रहते थे, लेकिन अंग्रेजों ने फूट डालो और राज करो की नीति द्वारा उसे समाप्त कर दिया।

वस्तुतः भारत में राष्ट्रवाद और हिन्दू मुसलमान सम्प्रदायवाद अनिवार्यतः आधुनिक संवृत्तियाँ हैं। गत शताब्दियों में अनिवार्यतः हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच संघर्ष के उदाहरण मिलते हैं वैसे ही जैसे शिया व शुन्नियों के झगड़ों अथवा जाति संघर्षों के। किन्तु 1880 के दशक से पूर्व साम्प्रदायिक दंगे कदाचित ही हुए हो। लेकिन 1880 के बाद से साम्प्रदायिक दंगे आम हो गए। संभव है कि सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तनाव व कारण इसके लिए उत्तरदायी रहे हों।

साहित्य भी अपने समय और परम्परा के अंतर्विरोधों के वस्तुपरक पड़ताल का अवसर प्रदान करता है। हमें इस अवसर को कत्तई नहीं खोना चाहिए तभी जाकर जैसा कि ब्रेख्त ने कहा था हम मानवद्रोही शक्तियों के विरूद्ध लेखन के जरिये लड़ सकेंगे और लोगों को यह दिखा सकेंगे कि हम लड़ रहे हैं। ब्रेख्त के ही इन शब्दों को दुहराना हमारे आज के समय में कोई नारेबाजी नहीं बल्कि एक जरूरी और आकुल भावनात्मक अपील है। निराला का उपन्यास कुल्लीभाट भी स्वतंत्रता के पूर्व के सम्प्रदायिक सवालों को पूरी संजीदगी के साथ उठाता है। कुल्ली ने निराला से मिलकर एक मुसलमानिन के साथ प्रेम की चर्चा की और उसे घर लाने की बात की निराला ने कहा अवश्य ले आओ। निराला ने लिखा हैः– ''कुल्ली में जैसे स्वर्गीय स्पिरिट आ गई। कुल्ली उदात्त स्वर में बोले ये हिन्दू नामर्द हो गए हैं। दूसरों को भी नामर्द करना चाहते हैं। इस प्रकार कुल्ली प्रत्यक्ष होकर धार्मिक कट्टरपंथियों से टकरा रहे थे। कुल्ली कहते हैं– ''मुसलमान इसलिए नाराज हैं कि मुसलमानिन ले आया हूँ...। हिन्दुओं ने बराबर समाज को धोखा दिया है। लेकिन यह कबीर की बहन है इसे कोई धोखा नहीं दे सकता। एक जगह कुल्ली कहते हैं– हिन्दू बड़े नालायक हैं। इस हद तक मुझे उम्मीद न थी।''

इस तरह कुल्लीभाट हिन्दुओं द्वारा भरपूर अपमानित होने के बावजूद मुसलमान स्त्री से विवाह करते हैं, दलितों उपेक्षितों की सेवा करते हैं। अछूत समाज में जागृति फैलाते हैं। धार्मिक रूढ़िवाद का उत्तर सामाजिक क्रांति से देते हैं।

कुल्लीभाट ने माला व कण्ठी वापस करने के प्रकरण पर कहा– ''जब आप शुद्ध की हुई मुसलमानिन को नहीं ग्रहण कर सकते, तो आप गुरू नहीं ढोंगी हैं, आप ने व्यापार खोल रखा है। आप में हृदय का बल नहीं आप एक नहीं सौ उल्टी माला जपिए। हिन्दुओं ने बराबर समाज को धोखा दिया है। लेकिन यह कबीर की बहन है इसे कोई धोखा नहीं दे सकता। इसमें श्रद्धा है, श्रद्धा न होती तो मेरे पास न आती। कबीर को रामानंद ने ऐसी ही बात कही थी लेकिन कबीर समझदार था। इसीलिए आप जैसे सैकड़ों गुरू उसके चेले हुए। हिन्दुओं को चराया और मुसलमानों को भी और था महामूर्ख।''

तोड़ने होंगे गढ़ और मठ.... जिसको मुक्तिबोध ने इतने दिनों बाद चिन्हित किया उसे स्वतंत्रता पूर्व निराला ने पहचान लिया था। इसलिए निराला ने लिखा कि जातिगत भेदभाव हो या फिर साम्प्रदायिकता दरअसल मनुष्य के विमानवीकरण की जड़े इन्हीं मठों और मस्जिदों में हैं। आवश्यकता है, इनकी जड़े मार दी जाएँ।

इस प्रकार कुल्लीभाट के माध्यम से निराला साम्प्रदायिक सवालों को उठाते हैं और उसके समाधान के रूप में कबीर की तरह कुल्लीभाट को खड़ा करते हैं। निराला द्वारा उठाया गया यह सवाल आज और भयावह होकर उसी तरह मानवता के सामने (गाय, गोबर, लव जेहाद) मुँह बाये खड़ा है। इस फॉसीवादी बर्बरता के खिलाफ आगे भी एक लम्बी लड़ाई बाकी है।

उपन्यास यथार्थवाद की समस्या पर विचार करते हुए जार्ज लुकाच ने लिखा हैः– ''प्रायः श्रेष्ठ ऐतिहासिक निर्मितियाँ असंख्य नए तथ्यों और सम्बन्ध सूत्रों की खोज करके सामंती सर्वसत्तावाद के 'तर्कहीन समाज के परिवर्तन की अनिवार्यता प्रकट करती हैं। इतिहास के सबक उन सिद्धांतों की प्रस्तावना करते हैं जिनकी मदद से 'तर्कसंगत समाज' 'तर्कसंगत' राज्य निर्मित किया जा सकता है।

इस प्रकार यथार्थवादी कथानक में न सिर्फ तर्कहीन वर्तमान की आलोचना रहती है, बल्कि भविष्य की दृष्टि भी निहित होती है। उपन्यास कुल्लीभाट भी इसका अपवाद नहीं। अपने तत्कालीन समाज और वर्तमान की विवेकपूर्ण आलोचना होने के साथ ही साथ उपन्यास कुल्लीभाट इतिहास की दबी चीखों का दस्तावेज भी है।

संदर्भ

1. आधुनिकता के आईने में दलित_आदित्य निगम का लेख पेज नंबर_164 सी एस डियस प्रकाशन दिल्ली
2. कुल्लीभाट-निराला_राजकमल प्रकाशन दिल्ली
3. निराला की साहित्य साधना,रामविलास शर्मा, राजकमल दिल्ली
4. आधुनिक भारत-सुमित सरकार पेज 78.
5. निराला रचनावली. नंदकिशोर नवल.राजकमल प्रकाशन दिल्ली
6. बिल्लेसुर बकरीहा, रूप गठन की समस्या, अजय तिवारी
7. निराला संचयिता. रमेश चंद्र शाह. वाणी प्रकाशन दिल्ली